# लेखन कला की उत्पत्ति व प्राचीनता

लेखन कला की उत्पत्ति का इतिहास अत्यन्त विवादास्पद है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मानव जीवन के सभ्य और सुसंस्कृत होते जाने के साथ ही उसकी अभिव्यक्तियों का क्षेत्र भी विस्तृत होता गया। अपने मनोभावों को व्यक्त करने और चिरस्थायी रखने की आकांक्षा और उसे किसी अन्य को उसी रूप में सम्प्रेषित करने की अभिलाषा ने लेखन-कला को जन्म दिया होगा। यही कारण है कि लिपियों का प्रारम्भिक रूप चित्रात्मक रहा है, चाहे वह मिस्र की लिपि हो अथवा चीन की। हड़प्पा सभ्यता के सन्दर्भ में भी यह कथनीय है कि वहाँ की लिपि को भी विद्वान चित्रात्मक ही मानते हैं, यद्यपि वहाँ की लिपि अभी भी सन्तोषजनक रूप से पढ़ी नहीं जा सकी है। अनेक विद्वानों का विचार है कि चित्रों के बाद ही मानव ने अक्षरों की कल्पना की। फिर अक्षरों को निश्चित रूप, उच्चारण एवं नाम दिया, जिसके परिणाम स्वरूप वर्णाक्षर एवं वर्णमाला तैयार हुई। शनैः शनैः विकास की प्रक्रियाओं से गुजरते हुए लिपि परिपक्व व विकसित अवस्था में पहुँची।

भारतीय जन-मानस की सोच सदैव आद्यात्मिक रही है। उसका हृदय एवं बुद्धि लोक से ज्यादा परलोक से सानिध्य अनुभव करते हैं। प्रकृति के नाना स्वरूप, प्राकृतिक उपलब्धियाँ अथवा आपदाएँ सभी को उसने दैवीय माना है। इसीलिए वेद अपौरुषेय हैं, वर्ण-व्यवस्था ब्रह्मा के दिव्य शरीर से निःसृत है, पाणिनीय व्याकरण के चौदह मूलसूत्र शिव के डमरू की ध्वनि हैं और लेखन कला के जनक ब्रह्मा हैं। नारद स्मृति में उल्लिखित है—

नाकरिष्यद्यदि ब्रह्मा लिखितं चक्षुरुत्तमम्।
तत्रैयमस्य लोकस्य नाभविष्यच्छुभा गतिः।

अर्थात् यदि ब्रह्मा नेत्र के समान उत्तम लेखन-कला की सृष्टि न करते तो इस लोक की यह शुभ-गति अथवा सुन्दर संचरण न होता।

जैन ग्रन्थ समवायांग सूत्र (३०० ई०पू०) तथा पण्णावणा सूत्र (१६८ ई०पू०) से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। बादामी से प्राप्त ब्रह्मा की मूर्ति में उन्हें लेखन के लिए प्रयुक्त होने वाले ताड़-पत्र को हाथ में धारण किए हुए दिखाया गया है। इस मूर्ति की तिथि ५०० ईस्वी निर्धारित की जाती है।

चीनी विश्वकोश फा-वान-शू-लिन के विवरणानुसार बाईं ओर से दाहिनी ओर लिखी जाने वाली सर्वोत्तम लिपि का आविष्कार फाङ् ने किया था। इस फाङ्

Scanned with CamScanner

की पहचान ब्रह्मा के रूप में की जाती है। इस प्रकार फा-वान-शू-लिन के अनुसार भी ब्राह्मी लिपि के आविष्कारक ब्रह्मा ही थे।

अल्बरूनी के अनुसार भारतीयों द्वारा उनकी मूल व प्राचीन लिपि पूर्णतया विस्मृत कर दी गई थी। पाराशर ऋषि के पुत्र वेदव्यास ने दैवीय प्रेरणा से अनुप्राणित होकर पुन: लेखन कला का प्रारम्भ किया। इसीलिए उन्हें वेदों का संकलनकर्ता एवं महाभारत का रचयिता स्वीकार किया जाता है।

यद्यपि सिन्धु घाटी की सभ्यता से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों से भी लेखन कला के प्रमाण मिलते हैं। यदि ये लेख थे तो अनेक प्रयासों के अनन्तर भी इन्हें पढ़ने में विद्वान सक्षम नहीं हो सके हैं। किन्तु इन्हें देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह एक चित्रात्मक लिपि थी, जिसके माध्यम से हड़प्पा सभ्यता के निवासी अपनी भावनाओं को व्यक्त करते थे। सम्भवत: हड़प्पा सभ्यता के पश्चात और वेदों के संकलन व लेखन से पूर्व का काल ही वह अंधकार युग है जिसके विषय में अल्बरूनी ने संकेत किया है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि भारतीय लेखन कला से पूर्णतया अनभिज्ञ थे और छठी शताब्दी ई०पू० में ही उन्हें इसका ज्ञान प्राप्त हुआ। वह भी विदेशियों की लिपि द्वारा। इस मत के समर्थकों में ब्यूलर, डेविड-डिरिंजर आदि विद्वानों का नाम लिया जा सकता है। मैक्समूलर का कथन है कि पाणिनि की अष्टाध्यायी में ऐसे कोई भी संकेत नहीं है, जो भारतीयों का पांचवी शताब्दी ई०पू० में लेखन से परिचय स्थापित कर सकें। वहाँ उल्लिखित 'यवनीय' भाषा को वे यवनों की भाषा अभिकल्पित करते हैं। किन्तु अधिकांश विद्वान मैक्समूलर के इस कथन से सहमत नहीं है। वृहस्पति-स्मृति में सृष्टिकर्ता द्वारा पत्तों पर लिखने का उल्लेख हुआ है। आदि पुराण में ऋषभनाथ द्वारा एक लिपि के आविष्कार और उसके ज्ञान को अपनी पुत्री बम्भी को देने का विवरण मिलता है। इसी बम्भी के नाम पर प्राचीन भारतीय लिपि का नाम ब्राह्मी पड़ा। ऐसा विद्वानों का मत है। इस प्रकार भारत में लेखन कला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय साहित्य, विदेशी यात्रियों के विवरण और पुरातात्विक उत्खननों से प्राप्त मुहरों, सिक्कों और अभिलेखों से भी इस कथन की पुष्टि होती है। विभिन्न साक्ष्यों से प्राप्त लिपि की प्राचीनता के विषय में विवरण निम्नलिखित हैं—

**वैदिक साहित्य**—भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के विषय में जानकारी के लिए प्राचीनतम उपलब्ध स्रोत चतुर्वेद हैं। ऋग्वेद में अनेक ऐसे शब्द प्राप्त होते हैं जिनका सम्बन्ध तत्कालीन व्याकरण से जोड़ा जा सकता है। वेद पद्यबद्ध रचना प्रतीत होते हैं और निश्चय ही उन्हें लिपिबद्ध किया गया होगा क्योंकि ऐसा होने की स्थिति में ही उन पर भाष्य व ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना करना सम्भव हुआ होगा। यजुर्वेद में भी 'क्षुरस' और 'भ्राजश' जैसे शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है जिनका

Scanned with CamScanner

तात्पर्य किसी कठोर लेखनी से है। ऋग्वेद में गायत्री, अनुष्टुप, बृहती, विराजय आदि छन्दों का नाम प्राप्त होता है। वाजसनेयी संहिता पंक्ति, द्विपद, चतुष्पद, षट्पद आदि छन्द भेदों का उल्लेख करती है। अर्थववेद में छन्दों की संख्या ११ तथा शतपथ ब्राह्मण में ८ बताई गई है। पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने सत्य ही कहा है कि छन्दोबद्ध साहित्य का मंथन करके ही उनके वर्ग नियत किए जा सकते हैं और यह लेखन कला की समुन्नत स्थिति का द्योतक है।

वैदिक साहित्य में अंकों की वृहद् गणनाओं का उल्लेख मिलता है, जो बिना लिखे संभव नहीं हो सकती। ऋग्वेद के एक सूत्र से यह संकेत मिलता है कि उस समय जुआ खेलने के लिए पासे का प्रयोग होता था जिस पर १, २, ३, ४, अंक लिखे रहते थे। इस सन्दर्भ में अर्थववेद में 'संलिखित' शब्द का अर्थ जुए के हिसाब में जीत का लिखा हुआ धन से है। अतः निश्चित रूप से वैदिक समाज के लोग लेखन-कला से परिचित रहे होंगे।

यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में 'गणक' शब्द का उल्लेख है, जिसका तात्पर्य 'गणना करने वाला' या 'गणित करने वाला' से है। यहाँ प्राप्त संख्याएँ इतनी अधिक संख्या में हैं कि बिना लिखे उनका प्रयोग करना सम्भव नहीं दिखायी देता। जैसे दश (१०), शत (१००), सहस्र (१०००), अयुत (१०,०००), नियुत (१,००,०००), प्रयुत (१०,००,०००), अर्बुद (१,००,००,०००), न्युर्बुद (१०,००,००,०००), समुद्र (१,००,००,००,०००), मध्य (१०,००,००,००,०००), अन्त (१,००,००,००, ००,०००) तथा परार्द्ध (१०,००,००,००,००,०००) आदि। उत्तरोतर वृद्धि प्राप्त करती हुई इन संख्याओं को बिना लिखे गणना करना असम्भव सा प्रतीत होता है।

**ब्राह्मण साहित्य**—ब्राह्मण साहित्य का काल मैक्समूलर द्वारा १४००-८०० ई०पू० तथा ब्यूलर और विंटरनित्ज द्वारा ४००-३०० ई०पू० स्वीकार किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त एक विवरण के अनुसार ऋग्वेद के अक्षरों से प्रजापति ने १२,००० वृहत छन्दों (३६ अक्षर) की रचना की थी। इस प्रकार ऋग्वेद के कुल अक्षरों की संख्या ४,३२,००० ज्ञात होती है। इसी ग्रन्थ में समय के विभाजन की भी गणना की गई है, जिससे ज्ञात होता है कि रात और दिन में ३० मुहूर्त होते हैं। इन मुहूर्तों का विभाजन प्राण (१/१७ सेकेण्ड) तक किया गया है।

इसी प्रकार पंचविंश ब्राह्मण यज्ञ में ऋत्विकों को दी जाने वाली दक्षिणाओं की व्याख्या व निर्देश देता है। सर्वाधिक सूक्ष्म दक्षिणा १२ कृष्णल भर सोना है। इसके पश्चात दक्षिणा दुगुने के क्रम में वर्द्धित होते हुए ३,९३,२१६ तक पहुँच जाती हैं। इस प्रकार की गणितीय व्याख्या लेखन-कला और गणित के ज्ञान के बिना संभव नहीं हो सकती।

शतपथ ब्राह्मण से प्राप्त वचन और लिङ्ग का भेद तथा तैत्तरीय संहिता में इन्द्र द्वारा वाणी को व्याकृत (नियमबद्ध) करने का उल्लेख स्पष्ट करता है कि उस काल

Scanned with CamScanner

तक व्याकरण का विस्तृत रूप से निर्धारण हो चुका था। जैसा कि पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का विचार है, ''लेखन की अनुपस्थिति में स्वर, व्यञ्जन, घोष-अघोष, सन्धि-नियम, वचन, लिंग तथा वैयाकरणीय नियमों का नियमन नहीं हो सकता था।''

**उपनिषद**—उपनिषदों से भी व्याकरण और वर्णमाला सम्बन्धी अनेक नियमों का ज्ञान प्राप्त होता है। ऐतरेय आरण्यक में स्वर, ऊष्मन् (श, ष, स, ह), स्पर्श (क, च, त, ट, प वर्ग), और अन्तस्थ (य, र, ल, व) व्यञ्जन और घोष (हर वर्ग का तीसरा, चौथा और पाँचवाँ वर्ण), णकार और नकार और दन्त्य सकार व षकार (मूर्धन्य) में अन्तर और ॐ की व्युत्पत्ति और सन्धियों का वर्णन किया गया है।

इसके अतिरिक्त यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि आरण्यक, उपनिषद् और अन्य ब्राह्मण ग्रंथ गद्यात्मक शैली में हैं और उनमें गूढ़ दार्शनिक विवचनों का तात्त्विक वर्णन और यज्ञों की जटिल क्रियाओं का उल्लेख है। इतना जटिल और श्रमसाध्य विषय लिखित रूप में नहीं रहा होगा यह कल्पना ही अविवेकपूर्ण और अव्यवहारिक प्रतीत होती है।

**महाकाव्य**—रामायण और महाभारत से भी लेखन कला की स्थिति सुस्पष्ट होती है। इन महाकाव्यों की तिथि चौथी शताब्दी ई०पू० निर्धारित की गई है और इनमें 'लिख', 'लेख', 'लेखन', 'लेखक' आदि-लेखन कला से सम्बन्धित विभिन्न शब्द प्राप्त होते हैं और उस काल में इस कला के ज्ञान को पूर्णतया स्थापित करते हैं।

**अर्थशास्त्र**—चौथी शताब्दी ई०पू० में कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र से भी लेखन-कला की प्राचीनता पर प्रकाश पड़ता है। इस ग्रन्थ में विभिन्न संदर्भों द्वारा 'लिपि-संख्यान' (लेखन और गणना), 'पत्र-सम्प्रेषणेन' (पत्र भेजने के द्वारा), 'संज्ञालिपिभिः' (संज्ञा और लिपि के साथ) और 'लेखवाचनसमर्थो लेखकः' (लिखने और पढ़ने में समर्थ लेखक) आदि शब्दों से तत्कालीन समाज में लेखन की पूर्णप्रतिष्ठा दिखाई देती है।

**सूत्र-साहित्य**—श्रौत, गृह्य और धर्मसूत्र से लेखन-कला व लिखित-पत्रकों के उल्लेख व प्रमाण प्राप्त होते हैं।

**अष्टाध्यायी**—पाणिनि की अष्टाध्यायी में लिपि, लिवि, लिपिकार, यवनानी, ग्रन्थ तथा स्वरित आदि शब्दों का प्रयोग दिखायी देता है, जो निश्चय ही लेखन कला से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। पाणिनि ने अपने ग्रन्थ में यत्र-तत्र कश्यप, गार्ग्य, चक्रवर्मन, भारद्वाज, शाकल्य आदि पूर्ववर्ती वैयाकरणों का नामोल्लेख किया है। इन प्रसंगों से यह प्रमाणित होता है कि पाणिनि से पूर्व ही व्याकरण का निर्माण हो चुका था और वह भाषा के साथ पूर्णतया व्यवहार में लाया जा रहा था। जिसमें समय-समय पर परिवर्तन, परिवर्द्धन और संशोधन किया जाता था।

**बौद्ध साहित्य**—बौद्ध साहित्य से भी लेखन कला की प्राचीनता पर प्रकाश पड़ता है। सिंहली त्रिपिटकों से यह स्पष्ट है कि बौद्ध आगमों के रचना-काल में लोग लेखन-कला से परिचित थे।

Scanned with CamScanner

त्रिपिटक में भिक्षुओं को 'अक्खरिका' नामक खेल से निषिद्ध किया गया है। 'अक्षरिका' नामक इस खेल में हवा में अक्षर लिख कर उसे पहचानना होता था। विनय-पिटक में लेखा-लेखन, लेखक आदि शब्दों के साथ ही लेखन-कला की प्रशंसा करते हुए उसे गृहस्थों की आजीविका का उत्तम साधन अभिहित किया गया है। जातकों में व्यक्तिगत, शासकीय तथा ऋण पत्रों (इणपण्ण) का उल्लेख मिलता है। कुरुधम्म, तेसकुन तथा सम्भव जातकों में स्वर्ण-पत्रों पर व्यवहारिक एवं नैतिक सिद्धान्तों का अंकन कराने का निर्देश प्राप्त होता है। महावग्ग में लिखितक (पंजीकृत) शब्द का उल्लेख है। महावग्ग से ही कुछ ऐसे शिक्षण संस्थानों का ज्ञान मिलता है, जहाँ लेखन की कला के रूप में शिक्षा दी जाती थी। पाठशालाओं के तीन प्रमुख विषयों में से एक 'लेखन' था (अन्य दो गणना या गणित और रूप—व्यवहार गणित, मुद्राशास्त्र आदि थे) इन्हीं तीन विषयों की शिक्षा प्राप्ति का उल्लेख खारवेल के हाथी गुम्फा अभिलेख से भी होता है—

> ''पदरसवसानि सिरि कुमार सरीरवता कीडिता कुमार कीडिका। ततो लेख- रूप गणना-व्यवहार-विधि विसारदेन सव विजावदातेन नव वसानि योवरज पसासित।''

ललितविस्तर में बुद्ध का लिपिशाला गमन और गुरु विश्वामित्र द्वारा चन्दन पट्ट पर स्वर्णलेखनी द्वारा अक्षर ज्ञान (विद्यारम्भ) कराने का उल्लेख मिलता है। उदान में 'लेखासिप्प' (लेखा शिल्प) को अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का शिल्प कहा गया है।

उपरोक्त साक्ष्यों के प्रकाश में यह कहना समीचीन है कि छठी शताब्दी ई०पू० से चौथी शताब्दी ई०पू० के मध्य लेखन-कला का पूर्ण विकास हो चुका था और इससे सम्बन्धित लोगों का समाज में अत्यधिक सम्मान था। पूर्ववर्ती काल के समान इस समय भी भोजपत्र पर लिखा जाता था। इसके अतिरिक्त काष्ठ आदि कड़े धरातल पर खोद कर लिखने की परम्परा भी प्रयोग में थी।

**जैन साहित्य**—जैन साहित्य में भी लेखन-कला के सन्दर्भ उद्धृत हैं। एक साक्ष्य में 'लिखना' जैनियों के लिए वर्जित कहा गया है। भगवती सुत्त का आरम्भ ब्राह्मी लिपि के नमन से हुआ है—'नमो वम्भिये लिविए'। पण्णावणा एवं समवायांग सुत्त से ज्ञात होता है कि दो प्रकार की लिपियाँ प्रचलन में थीं—बाँए से दाहिनी ओर लिखी जाने वाली तथा दाहिने से बाँईं ओर लिखी जाने वाली, जिनकी पहचान क्रमशः ब्राह्मी और खरोष्ठी से की जाती है। इनके अतिरिक्त 'पुक्खरसारिय' (पुष्करसारी) तथा दामिल (द्रविड़) शब्दों का उल्लेख मिलता है। ब्यूलर ने इन्हें भी लिपि माना है। उनके अनुसार, ''असम्भव नहीं कि पुष्करसद वंश के किसी व्यक्ति ने किसी नयी लिपि का आविष्कार किया हो या किसी प्रचलित लिपि का संस्कार कर उसे नया रूप दिया हो।'' जैन साहित्य में उल्लिखित 'यवणाणिया'

Scanned with CamScanner

शब्द की तुलना पाणिनीय अष्टाध्यायी के 'यवनानीय' से की जाती है। जिसका तात्पर्य 'यवनों की लिपि' से लगाया जाता है। अनेक विद्वानों का विचार है कि ५०९ ई०पू० में उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र पर स्काइलैक्स के आक्रमण के फलस्वरूप भारतीय यूनानियों के सम्पर्क आए होंगे और उनकी लिपि से परिचित हुए होंगे। किन्तु इससे पूर्व ही भारत और यूनान के बीच व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे और तभी से भारतीय यवन और यवन लिपि से परिचित रहे होंगे।

३०० ई०पू० के समवायांगसुत्त में ब्राह्मी वर्णमाला, बम्भी लिपि (ब्राह्मी लिपि) और उसमें ४६ मातृकाक्षर का उल्लेख किया गया है। इसमें 'ऋ', 'ॠ', 'ऌ' ॡ तथा क्ष की गणना नहीं की गई है।

इस प्रकार जैन-साहित्य से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर भी ब्राह्मी लिपि की प्राचीनता सिद्ध होती है।

**विदेशी यात्रियों का विवरण**—भारत आने वाले और अपनी यात्रा को लिपिबद्ध करने वाले अनेक विदेशी यात्रियों के यात्रा वृत्तान्त भी भारतीय लिपि की प्राचीनता पर प्रकाश डालते हैं।

चौथी शताब्दी ई०पू० में सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत आए उसके सेनापति निआर्कस ने अपने विवरण में लिखा है कि भारतीय रूई और कपड़ा कूट कर कागज बनाने की विद्या से पूर्णतया परिचित थे। यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं रोचक उल्लेख है।

मौर्य राज-सभा में यूनानी राजदूत के रूप में उपस्थित मेगस्थनीज भी भारत का वर्णन करते हुए कहता है कि भारत की सड़कों पर दूरी बताने वाले पाषाण-खण्ड दस-दस स्टेडिया (१ स्टेडिया = ६०६ फीट, ९ इंच) के अन्तर से लगे थे। उसने पञ्चांग और कुण्डली का भी उल्लेख किया है। साथ ही उसके वर्णन से ज्ञात होता है कि न्यायिक मामलों का फैसला स्मृतियों के आधार पर किया जाता था, जो निश्चय ही लिखित विधिशास्त्र रहा होगा। इन विवरणों से यह स्पष्ट है कि न केवल विशिष्टजन बल्कि सामान्यजन भी लेखन कला से परिचित थे और उसका लाभ उठा रहे थे।

कर्टियस के विवरण से भी भारत में वृक्ष की छाल (अथवा भोजपत्र) का लेखन में प्रयोग ज्ञात होता है। ह्वेनसांग के अनुसार भारत में लेखन कला अत्यन्त प्राचीन काल से ज्ञात थी।

विदेशी यात्रियों के विवरणों से प्राप्त उपरोक्त प्रमाण भारत में लेखन कला की सुदीर्घ प्राचीनता को स्पष्ट करते हैं।

**पुरातात्विक साक्ष्य**—साहित्यिक प्रमाणों की पुष्टि के लिए अनेक पुरातात्त्विक साक्ष्य उपलब्ध हैं। इन साक्ष्यों में विभिन्न स्थलों से प्राप्त धातुपत्र, मृत्तिकापट्ट, प्रस्तर एवं गुहाभित्तियों पर अंकित लेख हैं। इस प्रकार का प्रथम

Scanned with CamScanner